e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

IJIRSET

International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 11, Issue 1, January 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.569

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 11, Issue 1, January 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1101033 |

हिंदी भक्तिकाव्य में अनन्य प्रेमभाव

डॉ० श्याम पाल मौर्य

प्रभारी एवं एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश

भक्तिकालीन काव्य, हिंदी काव्य का चूड़ामणि है और भक्तिकालीन काव्य का चूड़ामणि है अनन्य भक्तिभाव। परम तत्त्व के प्रेम की पराकाष्ठा में जो अनुभव प्रेमी करता है वह अन्यतम है। परमसत्ता की प्रेम साधना का यह सर्वोच्च शिखर अपने इन्द्रधनुषी रूप में भक्तिकालीन कवियों की अप्रतिम और अनुभवसिद्ध प्रतिभा का अद्वितीय उपहार है। सच्चिदानन्द की प्राप्ति के विख्यात मार्ग ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के सभी क्षेत्रों में इस भाव की अवस्थिति दृष्टिगोचर होती है। भक्तिकालीन हिंदी काव्यकारों की कृतियों में इस भाव के पावन स्वरूप सर्वत्र विद्यमान है। अनन्य भक्त को परिभाषित करते हुए हिंदी के श्रेष्ठतम कवियों में से विश्व–वरेण्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस में लिखते हैं–

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।।(1)

समर्पित दास्य भाव का अनन्य भक्त वह है जिसकी बुद्धि सदैव इस निश्चय से सुदृढ़ रहती है कि वह सेवक है और सम्पूर्ण चराचर जगत उसके स्वामी भगवान का साक्षात स्वरूप है। अनन्य भक्त की अनुभूति सदैव इस अद्वैतभाव से परिपूर्ण रहती है।

ज्ञान हो, कर्म हो, चाहे उपासना, बिना श्रद्धा और प्रेम के इस उत्तुंग शिखर तक कोई नहीं पहुँच सकता आनन्द रस शेखर की महायात्रा तीनों की समन्वय युक्त तन्मय साधना है। श्मानसश में तुलसीदास ने कितनी व्यावहारिक और अनुभव सिद्ध बात कही है–

जाने बिनु न होईपरतीती।
बिनु परतीति होई नह प्रीती।।
प्रीति बिना नहि भक्ति दृढ़ाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।(2)

कर्म भी तभी इस उत्तम भूमिका में पहुंचता है, जब निष्काम, ईश्वर समर्पित, और कतृत्त्वाभिमान रहित होता है– स्वं स्वं कर्मणा तमभ्यर्च सिद्धिं विन्दति मानवः ।

श्रीमदभगवदगीता में अनन्य भक्तों के योगक्षेम वहन करने की प्रतिज्ञा स्वयं श्रीभगवान उद्घोषित करते हैं–

अनन्य चेताः ये जनारू मां पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

हिंदी के महान भक्त कवियों के इस भावोत्कर्ष का आधार ऋषियों द्वारा श्रुत वेद उपनिषद् हैं।

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है– 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत' और भी 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'। गीता में भगवान स्वयं अपने श्रीमुख से कहते हैं–

मत्तः परतरं नान्यत्किचिदस्ति धनंञ्जय।
मयिप्रोतमिदं सूत्रे मणिगणा इव।।

अनन्य ज्ञानी भक्त की ज्ञान दृष्टि से भगवान अपने को अभिन्त्र बताते हुए गीता में कहते हैं –

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यमि स च में न प्रणश्यति।।

परब्रह्म की इस अद्वय अवस्थिति का उदघोष वेदों, पुराणों, उपनिषदादि आर्ष ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित है। ज्ञान की दृष्टि से पूर्ण परब्रह्म की बात ईशावास्योपनिषद कहता है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।(3)

और भी अनुभव व्यक्त किये गये हैं–

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 11, Issue 1, January 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1101033 |

कर्म की दृष्टि से कबीर प्रमाणित करते हैं –

साधो सहज समाधि भली।
गुरुप्रताप जहँ दिनसे जागी, दिन दिन अधिक चली।।
जहँ जहँ डोलौ सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, बूझौं और न देवा।।
कहों सो नाम, सुनौ सो सुमिरन, खावौ पिवौ सो पूजा।
गिरह उजाड एक सम लेखौं,भाव मिटावौं दूजा।।
आँख न मूँदौ,कान न रूधौं, तनिक कष्ट नधारौ।
खुले नैन पहिचानो हँसि हँसि, संदर रूप निहारौ।।
सबद निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैंठत कब हूँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।।
कह कबीर यह उनमिनि रहनी, सो परकट करि गाई।
दुख सुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई।।(4)

भक्त शिरोमणि सूरदास, भक्ति की अनन्यता की चरमावस्था का चित्रण करते हैं– ''जित देखौं तित श्याममयी है।''

हिंदी के ज्ञानिशिरोमणि कवि कबीरदास की ज्ञान अनन्यता अनुभूति का अद्वितीय चमत्कार है–

तू तू करता तू भया मुझ में रही न हूँ ।
बारी फेरी बलि गई जित देखूँ तित तू।।
''जब मैं था तव हरि नहीं अब हरि है मैं नाहि।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या मॉहि।। (5)

भक्त जब एक मात्र अपने आराध्य के सदा सर्वत्र दर्शन करता है उसके अतिरिक्त न किसी की वह सत्ता स्वीकार करता है न आवश्यकता। आराध्य के सिवा कोई कितना ही सुन्दर और श्रेष्ठ हो, उसे तो केवल अपने प्रिय से ही काम है। उसकी इन्द्रियाँ, उसका मन उसकी मति कुछ भी हो, सब में प्रिय की अपरोक्ष अनुभूति होती है –

कानन दूसरो नाम सुनै नहीं, एक ही रंग रंग्यो यह डोरो।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै रसना मुख काढ़ि हलाहल बोरो।।
श्ठाकुरश चित्त की वृत्ति यहै, हम कैसेहूँ टेक तजैं नहिं भोरो।
बावरी वे अँखियाँ जरि जाहिं, जो साँवरो छाँड़ि निहारत गोरो।।

प्रियतम की छवि नेत्रों में ऐसी बस जाती है कि किसी दूसरे के लिए अवकाश ही नहीं बचता –

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ बसाय ।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय।।

श्याम रंग की जादुई श्यामता में डूबकर भक्त विवश हो जाता है, न कुछ अन्य चाह रहती है न राह। इस दिव्य प्रेमोन्माद में वह स्वर्ग और मोक्ष तक का तिरस्कार कर देता है–

तीन लोक की सम्पदा इन्द्रभवन को राज।
प्रेमी गनै न तूल सम, तजत प्रेम के काज।।

श्याम दीवानी गोपी की अद्भुत अनन्यता की पावन प्रेम निमग्नता और दिव्यता की झाँकी द्रष्टव्य है–

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमड़ आयो,
तामै तीन लोक बुड़ि गये एक संग में ।
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागद सु,
न्यारे करि बाँचौ कौन जन चितभंग मे।
आँखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि,
जम्बूनद–बुंद जमुना जल तरंग में।
यों ही मेरो मन, मेरे काम को रह्यो न माइ,
श्याम रंग हवै करि समानों श्याम रंग में।।

अनन्य प्रेम के बिना यह गौरव शिखर कोई ब्रह्मज्ञानी भी नहीं प्राप्त कर सकता। बस ज्ञान की सीमा जहाँ समाप्त होती हैं, मोक्ष–सन्यासी प्रेम रसिकों की लोक पावन लीला वहाँ से प्रारम्भ होती है। भक्ति ग्रन्थों में अनन्य प्रेम के आदर्श भी अद्भुत है।

जग जस भाजन चातक मीना।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 11, Issue 1, January 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1101033 |

नेम प्रेम निज निपुन नवीना।(6)

अपि च,

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ।
जाचत जलु पबि पाहन डारउ।।
चातकु रटिन घटें घटि जाई।
बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई।।(7)

कविवर रहीम चातक की इसी प्रेम–प्रतिज्ञा को देखकर स्तम्भित हो जाते हैं –

पपिहा का मन देखकर धीरज रहे न रंच।
मरते दम जल में पड़यौ तहुँ न वोरी चोंच।।

अनन्य भक्तों का यह अनुपम प्रेम एक तरफा प्रेम होता है। निष्कामता की पराकाष्ठा पर आरूढ़ यह दिव्य प्रेम–हठ प्रिय के प्रतिकूल व्यवहार करने पर भी रोम रोम पर सौ–सौ जन्म निछावर करके प्रिय का आभार प्रकट करने की शक्ति रखता है। अपनी टेक पर यह तीर्थ स्वरूप दीवाने जाने ऐसा क्या अनुभव करते हैं कि मन, मस्तिष्क के किसी मापदण्ड में नहीं आते। इस प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण रामचरितमानस का शिव–पार्वती प्रसंग है। तपोनिरत पार्वती की परीक्षा हेतु सप्तऋषि शिव की निन्दा कर भगवान विष्णु की प्रसंशा करते हैं किन्तु पार्वती अपने अनन्य प्रेम को दृढ़ता पूर्वक व्यक्त करती हैं–

महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुण धाम ।
जिहिं कर मन रम जाहि सन, तिहिं ताही सो काम । कोटि जन्म लगि रगर हमारी,
वरउँ संभु न तु रहौं कुमारी।(8)

वस्तुतः प्रेमी मन भी अद्‌भुत होता है। इस आलौकिक अनुभूति में एक में सब और सब में एक दिखने लगता है। जिसे यह रस मिल जाता है वह अपने प्रिय के लिए सब कुछ छोड़ने को गौरव समझता है –

अति अगाध, अति आथारो, नदी कूप सरि वाइ।
जाको मन रम जाहिं सन, ताको सोई सुहाय।।

भक्तशिरोमणि सूरदास की गोपियाँ उद्धव से यही रहस्य निवेदित करती हैं –

ऊधो, मन माने की बात।
दाख छुहारो छांड़ि अमृतफल, बिषकीरा बिष खातं।।
जो चकोर कों देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बंधत कमल के पात।।
ज्यों पतंग हित जानि आपुनो दीपक सो लपटात।
सूरदास, जाकौ जासों हित, सोई ताहि सुहात।।

इतना ही नहीं गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग की अखण्डता का अटल संकल्प घोषित करती है–

'हमारे हरि हारिल की लकरी।' विरह के अनन्त कष्टों को भी हँसते–हँसते सहकर भी अपनी अनन्य प्रेमनिष्ठा व्यक्त करती हैं–

भरे सँपूरन सकल–प्रेमजल, छुवन न काहू पाए।
राजकाज तै गए सूर प्रभु नंद नंदन कर लाए।।(9)

अनन्य प्रेमी का अनन्य प्रेम तो अनिर्वचनीय है ही, अनन्य प्रेमभाव भी अत्यन्त दुर्लभ प्राप्तव्य है। अनन्य प्रेम दीवानों के प्रेम का भावानुसरण और भावानुकरण भी उसी कोटि का होता है। भृंगी की भाँति उसका चिन्तन करने वाला कीट भी उसी के अभिन्न स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। रागानुगा भक्ति भी जगत को पावन करने कि क्षमता रखती है। शान्त, दास्य, सख्य, वत्सल तथा मधुर भक्तिभाव भी बड़भागी साधन प्रेमी अपना सकता है। रसिको के सखीभाव, कांताभाव, यहाँ तक कि राधाभाव तक को भक्तजन अपनाते देखे गये हैं।

निष्काम प्रेमभाव और प्रेम का अन्योन्यात्रित सम्बन्ध है। अनन्य प्रेम की व्यावहारिक यात्रा कर्मार्चना से ही प्रारम्भ होती है। प्रतिकार शून्य कर्म करना, कर्तापन के अभिमान से शुन्य होकर कर्म करना, संसार के सम्पूर्ण कर्मों को प्रियतम प्रभु को समर्पित करके कर्म करना, एक क्षण के भी विस्मरण में परमव्याकुलता का अनुभव करना, जन्मान्तर में भी प्रिय सानिध्य की उत्कट अभिलाषा करना अनन्य प्रेम भाव के सुदृढ़ आधार हैं।

स्वकीय भाव से परकीय भाव में निष्कामना और अधिकार शून्य समर्पण विरोध होता है इसलिए इसमें प्रेमाद्वैत भाव की सहज संभावना होती है।

जब मैं तुम में लग कर डाला तव दूर दुई का नाता है।
मैं तुम में हूँ, तुम मुझमें हो बस एक स्वरूप दिखाता है।।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 11, Issue 1, January 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1101033 |

महाकवि विद्यापति ने श्रीराधा की इसी दशा का सुन्दर चित्रण किया है –

अनुखन माधव माधव सुमरइते, सुंदरि भेल मधाई।
ओ निजभाव सुभावहि विसरल अपने हि गुन लुबुधाई।।

अनन्य प्रेमभाव के भेदों में निर्गुण और सगुण भक्ति भाव के दो भेव प्रसिद्ध रहे हैं जिनकी हिंदी के भक्तिकाल में सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। निर्गुण प्रेम भक्ति भाव की दृष्टि से अनन्यप्रेमी सम्पूर्ण जगत में एकमात्र अपने परम प्रिम परमेश्वर को प्रेम करता है, सम्पूर्ण जगत के प्राणिमात्र में अपने ही प्रिय के दर्शन करते हुए सबसे प्रेम करता है। कबीर कहते हैं

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रहयो समाई।(10)

सगुण प्रेम भक्ति की दृष्टि से अनन्य प्रेमी सम्पूर्ण जगत में सर्वत्र व्याप्त एवं प्रेम से प्रकट होने में परम समर्थ परम प्रिय प्रभु के चिदानन्दमय श्री–विग्रह से प्रेम करता है। प्रेमाद्वैत की स्थिति में भृंगी के कीट की भाँति स्वयं को ही परमप्रिय समझते हुए सर्वत्र सब में परम प्रिय प्रभु से प्रेम करता है। सगुण निर्गुण दोनों रूप अपने ही प्रभु के समझकर सदा सर्वत्र न प्रेम करता है।

महाकवि तुलसी रामचरितमानस मैं कहते हैं–

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम वश सगुन सो होइ।।(11)

हरि व्यापी सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रकट होहिं मै जाना।।

तत्त्वदर्शी संत दादू अपने अनन्य अनुभव को व्यक्त करते हैं–

जगसूँ कहा हमारा। जब देख्या नूर तुम्हारा।
परम तेज घर मेरा। सुख–सागर माहिं बसेरा।।
झिलिमिलि अति आनंदा। पाया परमानंदा।।
जोति अपार अनंता। खेलै फाग बसंता।।
आदि अंत असथाना। दादू सो पहिचाना।। (12)

गुरु नानकदेव जी भी अपनी प्रेमभक्ति के पावन भाव इसी तात्त्विक शैली में व्यक्त करते हैं–

काहे रे बन खोजन जाई।
सरब–निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।।
पुहुप मध्य जिऊँ बासु बसतु है, मुकुर माहिं जैसे छाँईं।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट ही खोजहु भाई ।
बाहरि भीतरि एकै जानहु, इह गुरु गिआनु बताई ।
जन नानक बिनु आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई।(13)

संत प्रवर रविदास जी भी समय भगवद्दर्शन की दिव्य अनुभूति को सुन्दर शैली में प्रकट करते हैं।

ऐसो कुछ अनुभव कहत न आवै।
साहिब मिले तो को बिलगावै।
सब में हरि है हरि में सब है, हरि अपनो जिन जाना।
साखी नहीं और कोई दूसर, जाननहार सयाना।।(14)

हिंदी के इन ज्ञानी संतो की भगवद्दर्शन के अनन्य प्रेम अभिव्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह सर्वथा अनुभवसिद्ध अभिव्यक्ति है इसीलिए इनका अनन्म प्रेम सगुण मार्गी भक्तों की प्रेमाभिव्यक्ति के सदृश अत्यन्त तरल, कलात्मक और चरमान्दपूर्ण व रस रूप है। इस अनुभव को अभिव्यक्ति देते समय ज्ञानी भी रसिक भक्तों की भाँति अत्यन्त प्रेम प्रवीण और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण और भावभंगिमाओं से युक्त दृष्टिगोचर होते हैं।

हिंदी के सगुण भक्तों के अनन्य प्रेम का तो कहना ही क्या ? तुलसीदास, सूरदास, मीरा, रसखान, रहीम की अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम छवियों के दिव्य प्राकट्य से हिंदी साहित्य भारती धन्य हो गयी है। अपनी अमोघ शक्ति से विश्व मानस को कृतकृत्य करने की जो सामर्थ इसने अर्जित की है वह कदाचिद विश्वसाहित्य में नहीं है। प्रेमी जीवन का यह चरम गौरव आदर्श दिखाकर जीव को परमतत्त्व से यह भाव अभिन्नता प्रदान कर सकता है। अनन्य प्रेम–निष्ठा का यह जगत पावन सौभाग्य, सर्वेश्वर भगवान का भी अनन्य प्रेम भाजन बनाकर कृतार्थ कर सकता है। स्वयं श्री भगवान का यह अटल वचन सभी को दिव्य आश्वासन है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।।(15)

अपि च

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 11, Issue 1, January 2022 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1101033 |

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।(16)
श्तस्मिंस्तजने भेदाभात्ः'।(17)

हिंदी के भक्ति काव्य का यह अनन्य प्रेमभाव, सरलता सहजता, मनोवैज्ञानिकता, अतिसूक्ष्मता, उदात्तता, सकारात्मकता और चरमान्दरसरूपता लिए हुए साधारण जन को भी अनन्य भक्त बनाकर कृष्ण भक्तों की भाँति जन्मान्तर में भी प्रभु के सानिध्य का प्रवल आकांक्षी बनाने की क्षमता प्रदान कर देता है–

मरिवे डरौं न जो मरौं पञ्चभूत कर वास।
पी वापी मारग मुकुर, वीजन अँगन अकास।।

संदर्भ सूची

1. तुलसी रामचरित मानस किष्किन्धा काण्ड़ 3/343
2. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड –(2)
3. ईशोपनिषद् ०१
4. कबीर ग्रंथावली
5. कबीर ग्रन्थावली
6. रामचरितमानस। अयोध्याकाण्ड।
7. रामचरितमानस। अयोध्याकाण्ड। 204
8. तुलसी। रामचरित मानस – बालकाण्ड 80–81
9. सूर, सूरसागर
10. कबीर ग्रन्थावली
11. तुलसी मानस– बालकाण्ड
12. गीताप्रेस गोरखपुर, भजनसंग्रह दादूदयाल/३८६/पृ०128
13. भजन संग्रह, गीता प्रेस गोरखपुर, 143/06 पृष्ठ 151
14. भजन संग्रह, गी०प्र०/३७१
15. श्रीमद भागवत् ११–२–४५
16. श्रीमद भागवत ६६४६६८
17. नारद भक्तिसूत्र – ४१

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor

Impact Factor: 7.569

doi crossref

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

Scan to save the contact details

www.ijirset.com